श्रीमद्भगवद्गीता

भक्तियोगः

द्वादशोऽध्यायः

प्रधान-सम्पादक/ General Editor
प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी
Prof. Shriniwas Varkhedi

सम्पादक/Editor
प्रीति शुक्ला : देवानन्द शुक्ल
Preeti Shukla : Devanand Shukl

केद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली
Central Sanskrit University, Delhi
(संसद् के अधिनियम के द्वारा स्थापित)
(Etablished by an act of Parliyament)

श्रीमद्भगवद्गीता

भक्तियोगः
द्वादशोध्यायः

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषयाः	श्लो.-सं.
१.	प्रास्ताविकम्	
२.	**सगुणनिर्गुणब्रह्मनिष्ठयोः मध्ये का श्रेष्ठा का च कर्तव्या इति अर्जुनस्य प्रश्नः -**	
	एवं सततयुक्ता ये	॥१॥
०१ ३.	**सगुणब्रह्मनिष्ठायाः सुकरत्वात्सौलभ्यं प्राशस्त्यं च -**	
	मय्यावेश्य मनो ये माम्	॥२॥
४.	**निर्गुणब्रह्मनिष्ठायाः दुष्करत्वाद् दौर्लभ्यं श्रेष्ठत्वं च**	
	ये त्वक्षरमनिर्देश्यम्	॥३॥
	सन्नियम्येन्द्रियग्रामम्	॥४॥
	क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्	॥५॥
५.	**सगुणब्रह्मोपासकानाम् अविलम्बेन मोक्षसिद्धिः**	
	ये तु सर्वाणि कर्माणि	॥६॥
६.	**सगुणनिर्गुणोपासनायाः सुकरं शीघ्रफलप्रदं च उपायचतुष्टयं भगवतः भक्तप्रेमातिरेकः च -**	
	तेषामहं समुद्धर्ता	॥७॥
७.	**विश्वरूपध्यानलक्षणे भक्तियोगेऽर्जुनं प्रति भगवत्प्रवर्तनम् -**	
	मय्येव मन आधत्स्व	॥८॥

८.	**भक्तियोगे परिनिष्ठितस्याभ्यासयोगादिसाधनकथनम्**	
	अथ चित्तं समाधातुम्	॥९॥
	अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि	॥१०॥
	अथैतदप्यशक्तोऽसि	॥११॥
९.	**सर्वकर्मफलत्यागस्य स्तुतिः**	
	श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाद्	॥१२॥
१०.	**धर्म्यामृतम् -अर्थात्तद्विष्णोः परमं पदम् अभीप्सूनां कृते भगवता उक्ताः जीवन्मुक्तधर्माः -**	
	अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्	॥१३॥
	सन्तुष्टः सततं योगी	॥१४॥
	यस्मान्नोद्विजते लोको	॥१५॥
	अनपेक्षः शुचिर्दक्षः	॥१६॥
	यो न हृष्यति न द्वेष्टि	॥१७॥
	समः शत्रौ च मित्रे च	॥१८॥
	तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी	॥१९॥
११.	**धर्म्यामृतानुष्ठानस्य फलश्रुतिः। यथोक्तधर्मपराणां स्वप्रीतिविषयत्वकथनम्**	
	ये तु धर्म्यामृतमिदम्	॥२०॥

===

क्र.	**विषयाः**	**पृ.-सं.**
१२.	**परिशिष्टम् - १ :** भक्तियोगः - द्वादशोऽध्यायः (मूलमात्रम्)	१४
१३.	**परिशिष्टम् - २ :** श्लोकानुक्रमसूची	१६
१४.	**परिशिष्टम् - ३ :** पादानुक्रमसूची	१७
१५.	**परिशिष्टम् - ४ :** पदानुक्रमसूची	१९
१६.	**परिशिष्टम् - ५ :** प्रयुक्तानां धातूनां विवरणम्	२२

प्रास्ताविकम्

॥वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
॥मातृपितृगुरुचरणकमलेभ्यो नमः॥

रामायणस्य अनन्तरं भारतस्य इतिहासे प्राचीनतमं महाकाव्यं महाभारतम् ऋषिव्यासः अलिखत्। अयं ग्रन्थः स्मृतिग्रन्थानाम् अंश: इति विद्वांसः अङ्गीकुर्वन्ति। महाभारते अष्टादश पर्वाणि सन्ति-

आदिपर्व सभापर्व वनपर्व विराटपर्व उद्योगपर्व भीष्मपर्व द्रोणपर्व कर्णपर्व
शल्यपर्व सौप्तिकपर्व स्त्रीपर्व शान्तिपर्व अनुशासनपर्व आश्वमेधिकपर्व
आश्रमवासिकपर्व मौसलपर्व महाप्रस्थानिकपर्व स्वर्गारोहणपर्व च।

एतदतिरिच्य हरिवंशपर्व खिलभागरूपेण प्रतिष्ठितम्। अस्मिन् ग्रन्थे प्राय: एकलक्षश्लोका: सन्ति। अस्य काव्यस्य भीष्मपर्वण: दिव्या अमृतरूपा श्रीमद्भगवद्गीता प्राप्यते। **भीष्मपर्वण:** त्रयोदशः अध्याय: गीतापर्व इति नाम्ना प्रसिद्ध:। श्रीमद्भगवद्गीता भगवत: श्रीकृष्णस्य मुखारविन्दात् निस्सृतम् अमृतवचनम् इति भारतीयसंस्कृते: पोषकम् आध्यात्मिकनिधिः च वर्तते। कुरुक्षेत्रे महाभारतस्य युद्धे भगवान् कृष्णः श्रीमद्भगवद्गीताम् अर्जुनाय उपदेशरूपेण प्रदत्तवान्। श्रीमद्भगवद्गीतायाः उद्भव: अर्जुनस्य विषादाद् अभवत् इति प्रसिद्धम् एव। श्रीमद्भगवद्गीतायाम् अष्टादशाध्यायेषु ७०० श्लोका: उपनिबद्धाः सन्ति।

द्वादशाध्यायस्य प्रतिपाद्यविषय : (भक्तियोग:)

द्वादशोऽध्यायः भक्तियोग इति ख्यातः । अस्मिन् अध्याये विंशतिः श्लोकाः प्राप्यन्ते । एकादशेऽध्याये भक्तिश्रेष्ठता ('मत्कर्मकृत्मत्परमः') वर्णिता। 'मत्कर्मकृत्मत्परमः' इति प्रेरणया एव अर्जुनः द्वादशोऽध्याये पृष्टवान् यत् कः भक्तः योगे श्रेष्ठः इति। ये भक्ताः भगवतः प्रसादेन सह स्नेहं प्राप्नुवन्ति। भगवान् श्रीकृष्णः अस्मिन् अध्याये तेषां वर्णनं करोति । भक्ते दृश्यमानानां भक्तिस्वरूपान् अतिरिच्य प्रायः ४० लक्षणानि अपि वर्णितानि सन्ति । एतान् भक्तिमार्गान् अनुसृत्य कश्चित् भक्तः एतान् भक्तिगुणान् विकसितुं शक्नोति ।

वस्तुतः अयं ग्रन्थः महापुरुषाणां सत्प्रेरणया एवं संकलितः संवलितश्च। इति धिया अयं ग्रन्थः गीताध्ययनदृष्ट्या जिज्ञासूनां कृते महते उपकाराय भवेदिति।

परमादरणीयान् केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य यशस्वीनः कुलपतिवर्यान् प्रो. श्रीनिवासवरखेडी-महोदयान् सादरं प्रणमामि कार्तज्ञञ्च विज्ञापयामि येषां प्रोत्साहनेन आशिषा च कार्यमिदं रूपमेतत् अवाप्नोत्।

ग्रन्थस्यास्य प्रकाशने प्रत्यक्षं परोक्षं वा साहायम् आचारितवन्तः समेपि भूरिशः धन्यतावचनेन भूष्यन्ते इति शम्।

प्रीति शुक्ला, देवानन्द शुक्ल

प्रस्तावना

॥वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
॥मातृपितृगुरुचरणकमलेभ्यो नमः॥

भारतीय इतिहास में रामायण के अतिरिक्त सबसे प्राचीन महाकाव्य ऋषि व्यास द्वारा लिखित महाभारत है। यह स्मृति ग्रंथों का एक भाग है, जिसे पर्वों के रूप में प्रसिद्ध अठारह भागों में विभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक को उपपर्वों और अध्यायों द्वारा व्यवस्थित किया गया है। इस महाकाव्य का मुख्य विषय भारत में राजकीय उत्तराधिकार और स्वामित्व के लिए प्रसिद्ध भ्रातृघातक युद्ध का वर्णन है, जो कुरुक्षेत्र में पांडवों और कौरवों के बीच हुआ था। प्राचीन भारत के लगभग सभी राजा अपनी सेना के साथ इस विनाशकारी युद्ध में सम्मिलित थे। महाभारत में कुल अठारह पर्व हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है।

आदिपर्व सभापर्व वनपर्व विराटपर्व उद्योगपर्व भीष्मपर्व द्रोणपर्व कर्णपर्व
शल्यपर्व सौप्तिकपर्व स्त्रीपर्व शान्तिपर्व अनुशासनपर्व आश्वमेधिकपर्व
आश्रमवासिकपर्व मौसलपर्व महाप्रस्थानिकपर्व स्वर्गारोहणपर्व

इससे आगे हरिवंश पर्व खिलभाग के रूप में स्थापित है। इस ग्रंथ में लगभग एक लाख श्लोक हैं। भीष्मपर्व में श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में दिव्य अमृत प्राप्त होता है। भीष्म पर्व के तेरहवें अध्याय को गीता पर्व के नाम से जाना जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता भगवान कृष्ण के मुखारविन्द से निकलने वाले अमृत के रूप में भारतीय संस्कृति का पोषण और आध्यात्मिक भण्डार है। कुरुक्षेत्र में महाभारत के युद्ध के अवसर पर भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश प्रदान किया था। यह सर्वविदित है कि श्रीमद भगवद गीता की उत्पत्ति अर्जुन के अवसाद के कारण हुई थी। ७०० श्लोकों में उपनिबद्ध श्रीमद्भगवद्गीता अठारह अध्यायों में विभक्त है।

बारहवें अध्याय में प्रस्तावित विषय (भक्ति योग)

बारहवें अध्याय को भक्तियोग के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में २० श्लोक प्राप्त होते हैं। ग्यारहवें अध्याय में भक्ति की श्रेष्ठता ('मत्कर्मकृत्मत्परमः') का निरूपण किया गया है। 'मत्कर्मकृत्मत्परमः' इस पंक्ति की प्रेरणा के कारण ही अर्जुन ने बारहवे अध्याय में प्रश्न किया कि कौन सा भक्त योग में सर्वोत्कृष्ट

है। इस अध्याय में भगवान् कृष्ण उन भक्तों का वर्णन करते हैं जिन पर भगवान् की कृपा के साथ-साथ प्रेम एवं स्नेह प्राप्त होता है। भक्त में दिखाई देने वाली भक्ति की अवस्थाओं के अतिरिक्त लगभग ४० लक्षणों का भी वर्णन किया गया है। भक्ति के इस मार्ग का अनुसरण करने का इच्छुक कोई भी व्यक्ति इन भक्ति के गुणों को विकसित कर सकता है।

वस्तुतः यह ग्रंथ महापुरुषों की सद्प्रेरणा से संवलित और संकलित किया गया है। अध्ययन की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए, गीता अध्ययन की दृष्टि से जिज्ञासु लोगों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी को नमन एवं आभार व्यक्त करते हैं, जिनके प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सहायक सभी बन्धुओं का हृदय से आभार व्यक्त करते है।

प्रीति शुक्ला, देवानन्द शुक्ल

Preface

॥ vande mahāpuruṣa te caraṇāravindam ॥
॥ mātṛpitṛgurucaraṇakamalebhyo namaḥ ॥

The most ancient epic poem in Indian history besides The *Rāmāyaṇa* is The *Mahābhārata* authored by sage Vyāsa. It is a part of *Smṛti* texts which is divided into eighteen sections known as *parvans*, each of which is further organised by sub-parvans and chapters. The main theme of this epic is the legendary fratricidal battle for regal succession and supremacy in India fought between paternal cousins, the Pāṇḍavas and the Kauravas, on the plains of Kurukṣetra. Almost all the kings with their troops from all over ancient India were involved in this catastrophic battle. The *Mahābhārata* has in total eighteen *parvans* viz.,

Ādi, Sabhā, Araṇya (Vana), Virāṭa, Udyoga, Bhīṣma, Droṇa, Karṇa, Śalya, Sauṣuptika (Sauptika), Strī, Śānti, Ānuśāsanika, Aśvamedha, Āśramavāsika, Mausala, Mahāprasthāna and Svargārohaṇa

adding upto approximately one lakh verses.

It is in this very epic at the most dramatic moment we find the divine song of the lord, *Śrīmad-Bhagavad-Gītā* (henceforth BhG) included in the **Bhīṣma Parva** (chapters 25 to 42). It consists of eighteen chapters and has approximately 700 verses. The complete epic is in narrative form in the order leading to the innermost frame till BhG viz.

Propounded topics in 12th Chapter (Bhakti Yoga)

The twelfth chapter is known as ***Bhakti Yoga*** and it contains 20 verses. In the 11th chapter, the superiority of devotion ('मत्कर्मकृत्मत्परमः') has been told. This led Arjuna to ask in this 12th chapter regarding which devotee is supreme in Yoga. Lord Krishna describes the types of devotees on whom the grace and love of God are showered. The stages and around 40 characteristics of devotion which are seen in the devotee are also described. These devotional virtues can be inculcated by anyone who wants to follow this path of Bhakti.

In fact, this book has been collected and compiled with the inspiration of Mahapurusha (great men). From the point of view of study, this book will prove useful for those who are curious about the study of Gita.

We are heartily grateful to the hon'ble Vice Chancellor of Central Sanskrit University, Prof. Srinivasa Varkhedi, whose encouragement and blessings have made this work possible. We also express our gratitude to all the friends who directly and indirectly helped in the publication of this book.

Preeti Shukla & Devanand Shukl

श्रीमद्भगवद्गीता

श्री गणेशाय नमः

॥ वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

द्वादशोऽध्यायः

भक्तियोगः

❖ *सगुणनिर्गुणब्रह्मनिष्ठयोः मध्ये का श्रेष्ठा का च कर्तव्या इति अर्जुनस्य प्रश्नः -*

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

पदच्छेदः एवम् सतत-युक्ताः ये भक्ताः त्वाम् पर्युपासते ।
ये च अपि अक्षरम् अव्यक्तम् तेषाम् के योग-वित्तमाः ॥

अन्वयः - ये भक्ताः एवम् सततयुक्ताः त्वाम् पर्युपासते च ये अक्षरम् अव्यक्तम् अपि (पर्युपासते) तेषाम् योगवित्तमाः के (सन्ति)।

भावार्थः

संस्कृतम् : ये सेश्वरब्रह्मोपासकाः भक्ताः अनन्यशरणाः नैरन्तर्येण भगवत्कर्मादौ समाहिताः सन्तः त्वाम् ध्यायन्ति। अन्येऽपि त्यक्तसर्वैषणाः अविनाशिनं ब्रह्म अपि उपासनां कुर्वन्ति। उभयेषां मध्ये अतिशयेन योगविदः कतरे सन्ति ?

हिन्दी : जो ईश्वरभक्त निरन्तर ध्यान में लगे हुए तुम्हारी श्रेष्ठ भाव से उपासना करते हैं और जो अविनाशी निराकार ब्रह्म की ही श्रेष्ठ भाव से उपासना करते हैं उनमें से उत्तम योग को जानने वाले कौन हैं?

English : Those devotees (devoted to your manifest form) who, thus ever-steadfast, properly worship you and those also who properly worship the Imperishable and the Unmanifested Brahma – which of them are most learned in Yoga?

==

❖ *सगुणब्रह्मनिष्ठायाः सुकरत्वात्सौलभ्यं प्राशस्त्यं च -*

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

पदच्छेदः मयि आवेश्य मनः ये माम् नित्य-युक्ताः उपासते।
श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमाः मताः॥

अन्वयः - मयि मनः आवेश्य नित्ययुक्ताः ये परया श्रद्धया उपेताः माम् उपासते ते मे युक्ततमाः मताः (सन्ति)।

भावार्थः

संस्कृतम् - मयि विश्वरूपे परमेश्वरे मन: एकाग्रं कृत्वा सदोद्युक्ताः ये श्रेष्ठया सात्त्विक्या श्रद्धया युक्ता: माम् परमेश्वरम् आराधयन्ति ते मम युक्ततमा: (उत्तमयोगिनः) अभिप्रेता: सन्ति।

हिन्दी : मुझ विश्वरूप परमेश्वर में मन को एकाग्र करके नित्य लगे हुए जो श्रेष्ठ सात्त्विक श्रद्धा से युक्त होकर मेरी परमेश्वर की उपासना करते हैं, वे मुझे उत्तम योगी के रूप मान्य हैं।

English - Those who fix their mind on Me in Universal Form, ever-steadfast and endowed with supreme sattvika faith worship Me, them I consider the most perfect Yogi.

==

❖ *निर्गुणब्रह्मनिष्ठायाः दुष्करत्वाद् दौर्लभ्यं श्रेष्ठत्वं च -*

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

पदच्छेदः

ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तम् पर्युपासते।
सर्वत्रगम् अचिन्त्यम् च कूटस्थम् अचलम् ध्रुवम्॥
सन्नियम्य इन्द्रिय-ग्रामम् सर्वत्र सम-बुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति माम् एव सर्व-भूत-हिते रताः॥

अन्वयः - तु ये इन्द्रियग्रामम् सन्नियम्य अचिन्त्यम् सर्वत्रगम् अनिर्देश्यम् च कूटस्थम् ध्रुवम् अचलम् अव्यक्तम् अक्षरम् पर्युपासते ते सर्वभूतहिते रताः सर्वत्र समबुद्धयः माम् एव प्राप्नुवन्ति।

भावार्थः

संस्कृतम् किञ्च ये मनोयोगिन: इन्द्रियसमुदायं संहृत्य, अचिन्त्यं सर्वव्यापिनम् अशब्दगोचरम् च चैतन्यं नित्यं स्पन्दनरहितं रूपादिहीनम् अक्षरम् ब्रह्म ध्यायन्ति, ते सर्वभूतानां हिते निरता: सर्वदा समानभाविनः मां निर्विकल्पं परं ब्रह्म एव आप्नुवन्ति।

हिन्दी : परन्तु जो मनोयोगी इन्द्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार से वश में करके अचिन्त्य सर्वव्यापी अकथनीय और एक जैसे रहने वाले नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी ब्रह्म की निरन्तर उपासना करते हैं, वे सभी भूतों के हित में लगे हुए सबमें समानभाव वाले मुझको निर्विकल्पक ब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं।

English : But those who, having restrained all the senses, continuously worship the unthinkable, all-pervading, undefinable, unchangeable, eternal, immovable, unmanifested and imperishable Brahma, rejoicing in the welfare of all beings, even-minded everywhere, they indeed come to Me.

===

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखम् देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

पदच्छेदः

क्लेशः अधिकतरः तेषाम् अव्यक्त-असक्त-चेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिः दुःखम् देहवद्भिः अवाप्यते॥

अन्वयः - तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम् क्लेशः अधिकतरः (अस्ति) हि देहवद्भिः अव्यक्ता गतिः दुःखम् अवाप्यते।

भावार्थः

संस्कृतम् : तस्मिन् निराकारे आसक्तचित्तयुक्तानां जनानां काठिन्यम् अधिकं भवति। किञ्च देहाभिमानिभिः अव्यक्तविषया निरालम्बना गतिः दुःखेनैव प्राप्यते।

हिन्दी : उन निराकार में आसक्तचित्त वाले लोगों को कठिनाई विशेष होती है; क्योंकि देहधारियों के द्वारा अव्यक्त एवं आलम्बन से रहित गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।

English : Greater is their trouble whose obsessed minds are set on the Unmanifested, for the goal to reach the Unmanifested and free of suspension by the embodied is hard.

==

❖ *सगुणब्रह्मोपासकानाम् अविलम्बेन मोक्षसिद्धिः -*

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

पदच्छेदः ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येन एव योगेन माम् ध्यायन्तः उपासते ॥

अन्वयः - तु ये मत्पराः सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य माम् एव अनन्येन योगेन ध्यायन्तः उपासते॥

भावार्थः

संस्कृतम् : किञ्च ये भक्ताः मद्ध्यानपराः नित्यनैमित्तिकस्वाभाविकादीनि कर्माणि मयि ईश्वरे समर्प्य माम् एव अनन्येन भक्तियोगेन चिन्तयन्तः उपासनां कुर्वन्ति।

हिन्दी : परन्तु जो मेरे परायण होकर सम्पूर्ण नित्य नैमित्तिक एवं स्वाभाविक कर्मों को मुझ ईश्वर में अर्पित कर मुझको ही अनन्य योग से ध्यान करते हुए उपासना करते हैं।

English : But those devotees who are intent on Me and renounce all kinds of actions in Me, worship meditating on Me with single-minded devotion.

==

❖ *सगुणनिर्गुणोपासनायाः सुकरं शीघ्रफलप्रदं च उपायचतुष्टयं भगवतः भक्तप्रेमातिरेकः च-*

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

पदच्छेदः तेषाम् अहम् समुद्धर्ता मृत्यु-संसार-सागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मयि आवेशित-चेतसाम् ॥

अन्वयः - पार्थ तेषाम् मयि आवेशितचेतसाम् अहम् नचिरात् मृत्युसंसारसागरात् समुद्धर्ता भवामि॥

भावार्थः

संस्कृतम् : हे अर्जुन ! ये भक्ताः एकनिष्ठेन योगेन माम् एव ध्यायन्ति तेषाम् अहं मरणयुक्तभवसागरात् सकलविघ्नादिक्लेशेभ्य: शीघ्रमेव समुद्धरणकर्ता भवामि।

हिन्दी : हे अर्जुन ! उन मुझमें एकाग्रता से चित्त लगाने वालों का मैं विलम्ब न करते हुए मृत्युरूपी संसार सागर अर्थात् समस्त विघ्न आदि क्लेशों से शीघ्र ही उद्धार करने वाला हूँ। ॥

English : O Arjuna, of those whose minds are fixed on Me, I verily become the saviour from the ocean of death-bound worldly existence, in other words, I free them from all troubles.

===

❖ *विश्वरूपध्यानलक्षणे भक्तियोगेऽर्जुनं प्रति भगवत्प्रवर्तनम् -*

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

पदच्छेदः मयि एव मनः आधत्स्व मयि बुद्धिम् निवेशय।
निवसिष्यसि मयि एव अत ऊर्ध्वम् न संशयः ॥

अन्वयः - (त्वम्) मयि मनः आधत्स्व (च) (त्वम्) मयि एव बुद्धिम् निवेशय अतः ऊर्ध्वम् मयि एव (त्वम्) निवसिष्यसि न संशयः (अस्ति)॥

भावार्थः

संस्कृतम् : हे अर्जुन ! त्वम् मयि विश्वरूपे ईश्वरे सङ्कल्पविकल्पात्मकं मन: स्थिरीकुरु, त्वं मयि एव अध्यवसायं कुर्वतीम् बुद्धिं नियोजय, अत: त्वं सर्वदा मयि अर्थात् परमात्मनि वासं करिष्यसि। अस्मिन् संशय: नास्ति।

हिन्दी : हे अर्जुन ! तुम मुझमें ही संकल्प एवं विकल्परूपी मन स्थिर करो, तुम मुझमें अध्यवसाय करती हुई बुद्धि को लगाओ, इसके उपरान्त मुझ ईश्वर में ही तुम निवास करोगे इसमें कोई संशय नहीं है।

English : O Arjuna! Fix your mind (of will and choice) on Me and place your persevering intellect in Me only, thereafter, you shall no doubt live in Me alone.

==

❖ *भक्तियोगे परिनिष्ठितस्याभ्यासयोगादिसाधनकथनम्* -

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुम् धनञ्जय ॥९॥

पदच्छेदः अथ चित्तम् समाधातुम् न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यास-योगेन ततः माम् इच्छ आप्तुम् धनञ्जय ॥

अन्वयः - अथ चित्तम् मयि स्थिरम् समाधातुम् (त्वम्) न शक्नोषि ततः धनञ्जय अभ्यासयोगेन (त्वम्) माम् आप्तुम् इच्छ॥

भावार्थः

संस्कृतम् : हे अर्जुन ! यदि त्वं स्वीयं चित्तं मयि परमेश्वरे अचलं धारयितुम् न शक्तः भवसि, तर्हि त्वम् अभ्यासयोगेन अर्थात् भक्तियोगेन मां प्राप्तुं प्रयत्नं कुरु।

हिन्दी : यदि मन को मुझ ईश्वर में स्थिर रूप से स्थापित करने के लिये तुम समर्थ नहीं हो, तो हे अर्जुन! अभ्यासरूप योग के द्वारा तुम मुझको प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

English : If, however, you are not able to fix your mind steadily on Me, then O Arjuna, by practice of Yoga (devotion), seek to reach Me.

==

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

पदच्छेदः अभ्यासे अपि असमर्थः असि मत्-कर्म-परमः भव।
मत्-अर्थम् अपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि ॥

अन्वयः - अभ्यासे अपि (त्वम्) असमर्थः असि (त्वम्) मत्कर्मपरमः भव मदर्थं कर्माणि कुर्वन् अपि (त्वम्) सिद्धिम् अवाप्स्यसि॥

भावार्थः

संस्कृतम् : हे अर्जुन ! यदि त्वं निर्दिष्टरीत्या अभ्यासयोगेन अपि अशक्त: असि। त्वम् मत्कर्मप्रधान: भव। मत्प्रीत्यर्थं पूजाजपस्वाध्यायहोमादीन् कर्माणि कुर्वन् त्वं सत्त्वशुद्धियोगज्ञानप्राप्तिद्वारेण सिद्धिं प्राप्स्यसि।

हिन्दी : हे अर्जुन ! यदि तुम उक्तरीति से अभ्यास में भी असमर्थ हो, तुम मेरे कर्म में परायण हो जाओ, मेरे निमित्त कर्म पूजा, जप, स्वाध्याय एवं हवन आदि को करते हुए भी तुम सत्त्व, शुद्धि, योग और ज्ञान के माध्यम से सिद्धि को प्राप्त करोगे।

English : O Arjuna! If you are unable to practice Yoga as mentioned before, be intent on performing my supreme service and actions such as worshipping, chanting, studying (scriptures), offering oblations etc. for My sake, you shall attain perfection through the means of purity of mind, steadfastness and knowledge.

==

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

पदच्छेदः अथ एतत् अपि अशक्तः असि कर्तुम् मत्-योगम् आश्रितः।
सर्व-कर्म-फल-त्यागम् ततः कुरु यत-आत्मवान् ॥

अन्वयः - अथ मद्योगम् आश्रितः एतत् कर्तुम् अपि (त्वम्) अशक्तः असि ततः यतात्मवान् (त्वम्) सर्वकर्म-फलत्यागम् कुरु॥

भावार्थः

संस्कृतम् : यदि त्वं मम आश्रितः भूत्वा अपि क्रियमाणानि कर्माणि सन्न्यस्य मदेकशरणं भवितुं न अर्हसि। तर्हि संयतचित्त: त्वं सर्वेषां दृष्टादृष्टानाम् आवश्यकानां फलानां त्यागं कुरु।

हिन्दी : यदि तुम मेरे योग के आश्रित होकर भी किए जाने वाले कर्म को करने में एवं मेरी शरण में आने में भी असमर्थ हो तो आत्मनियन्त्रित तुम सब प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष आवश्यक कर्मों के फल का त्याग करो।

English : If depending on Me, you are unable to even perform these actions and taking refuge in My yoga, you be self-controlled and renounce the fruits of all direct and indirect necessary actions.

==

❖ *सर्वकर्मफलत्यागस्य स्तुतिः -*

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

पदच्छेदः श्रेयः हि ज्ञानम् अभ्यासात् ज्ञानात् ध्यानम् विशिष्यते।
ध्यानात् कर्म-फल-त्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम् ॥

अन्वयः - अभ्यासात् ज्ञानम् श्रेयः (अस्ति) ज्ञानात् ध्यानम् विशिष्यते ध्यानात् कर्मफलत्यागः (विशिष्यते) हि त्यागात् अनन्तरम् शान्तिः (भवति)॥

भावार्थः

संस्कृतम् : अभ्यासात् युक्तिसहितोपदेशपूर्वकं ज्ञानं श्रेष्ठं भवति। ज्ञानात् भगवन्मयत्वं ध्यानं विशेषत्वं याति। ध्यानात् सर्वकर्मणां फलत्याग: श्रेष्ठः अस्ति। तत्पश्चात् अव्यवधानेन एव आत्यन्तिकी शान्ति: भवति।

हिन्दी : अभ्यास से युक्ति सहित उपदेशात्मक ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से भगवान् का चिन्तन करने वाला ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से समस्त कर्मों के फल का त्याग (श्रेष्ठ है); क्योंकि त्याग के तत्काल बाद ही परम शान्ति प्राप्त होती है।

English : Instructional knowledge based on reason is better than practice; meditation on Me excels knowledge; renunciation of the fruit of all actions excels meditation; indeed on renunciation follows peace immediately.

==

❖ *धर्म्यामृतम् - अर्थात्तद्विष्णोः परमं पदम् अभीप्सूनां कृते भगवता उक्ताः जीवन्मुक्तधर्माः-*

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

पदच्छेदः अद्वेष्टा सर्व-भूतानाम् मैत्रः करुण एव च।
निर्ममः निरहङ्कारः सम-दुःख-सुखः क्षमी ॥
सन्तुष्टः सततम् योगी यतात्मा दृढ-निश्चयः।
मयि अर्पित-मनः-बुद्धिः यः मत्-भक्तः सः मे प्रियः ॥

अन्वयः - यः सर्वभूतानाम् अद्वेष्टा मैत्रः च करुणः एव निर्ममः निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी योगी सततम् सन्तुष्टः यतात्मा दृढनिश्चयः (अस्ति) सः मयि अर्पितमनोबुद्धिः मद्भक्तः मे प्रियः (अस्ति)॥

भावार्थः

सस्कृतम् : हे अर्जुन ! य: आत्मन: दु:खहेतुमपि न किञ्चित् द्वेष्टि, समेषु मित्रतया वर्तते, करुणायुक्तः, ममप्रत्ययवर्जित:, अहङ्काररहितः, सुख-दुःखे समभावयुतः, क्षमावान्, समाहितचित्त: योगी, सर्वदा लाभेऽलाभे प्रसन्नचित्त,: संयतस्वभाव:, दृढश्रद्धावान् अस्ति। स: मयि निर्गुणे ब्रह्मणि स्वमनः बुद्धिं च सन्निवेश्य तिष्ठति। स: भक्त: मम प्रियः भवति।

हिन्दी : हे अर्जुन ! अपने दुःख के कारण किसी से द्वेष नही करता है, सभी से मित्रवत् व्यवहार करता है, करुणा से युक्त, ममता से रहित, अहंकार रहित, सुख एवं दुःख में समान, क्षमावान्, योगी, सदा लाभ एवं हानि में प्रसन्न, आत्मनियन्त्रित एवं दृढ़ श्रद्धा वाला है, वह मुझ निर्गुण ब्रह्म में मन बुद्धि समर्पित करने वाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

English : O Arjuna! He who due to hos own pain, is a non-hater of all living entities, friendly and compassionate, free from attachment and egoism, even-minded in pain and pleasure, forgiving, the Yogi, who is ever contented in profit and loss, self-controlled, with firm determination, a staunch believer and engaged mind and intellect in Me, he, My devotee is dear to Me.

==

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

पदच्छेद: यस्मात् न उद्विजते लोकः लोकात् न उद्विजते च यः।
हर्ष-अमर्ष-भय-उद्वेगैः मुक्तः यः सः च मे प्रियः॥

अन्वयः - यस्मात् लोकः न उद्विजते च यः लोकात् न उद्विजते च यः हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः (अस्ति) सः मे प्रियः (अस्ति)।

भावार्थः

संस्कृतम् : यस्मात् लोक: (प्राणी) भयशङ्कया सङ्क्षोभं न प्राप्नोति य लोकात् (प्राणिनः) उद्विग्नः न भवति य: हर्षेण असहिष्णुतया भयेन व्याकुलतया च रहितः अस्ति। स: भक्त: मम प्रियः भवति।

हिन्दी : जिससे लोक (प्राणी) भय एवं शंका के कारण उद्वेग को नहीं प्राप्त होते हैं और जो लोक (प्राणियों) से उद्वेग को नहीं प्राप्त होता तथा जो हर्ष, असहिष्णुता, भय और उद्वेग से मुक्त है, वह मुझको प्रिय है।

English : He from whom the entities are not agitated due to fear and doubt and who cannot be agitated by the entities, also he who is freed from joy, envy, fear and anxiety, he is dear to Me.

==

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

पदच्छेदः अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गत-व्यथः।
सर्वारम्भ-परित्यागी यः मत्-भक्तः सः मे प्रियः ॥

अन्वयः - यः अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गतव्यथः (अस्ति) सः सर्वारम्भपरित्यागी मद्भक्तः मे प्रियः (अस्ति)॥

भावार्थः

संस्कृतम् : अपेक्षाविषयेषु नि:स्पृह: बाह्येन आभ्यन्तरेण च शौचेन सम्पन्न: कुशलः पक्षपातरहित: गतभय: अस्ति। स: सर्वकर्मणां प्रारम्भस्य त्यागी मम भक्तः मम प्रिय: अस्ति।

हिन्दी : जो पुरुष अपेक्षा से रहित, बाह्य एवं आन्तरिक रूप से शुद्ध, कुशल पक्षपात से रहित एवं भयरहित है, वह समस्त सभी कर्मों के आरम्भों को त्यागने वाला मेरा भक्त, मुझको प्रिय है।

English : He who has no expectation, is pure (externally as well as internally), skillful, unconcerned, untroubled, renouncing all endeavours, he, My devotee is dear to Me.

==

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

पदच्छेदः यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभ-अशुभ-परित्यागी भक्तिमान् यः सः मे प्रियः ॥

अन्वयः - यः न हृष्यति (यः) न द्वेष्टि (यः) न शोचति (यः) न काङ्क्षति यः शुभाशुभपरित्यागी (अस्ति) सः भक्तिमान् मे प्रियः (अस्ति)॥

भावार्थः

संस्कृतम् : य: प्रियं प्राप्य इष्टलाभे सति न हर्षं प्राप्नोति, य: अप्रियं प्राप्य अनिष्टप्राप्तौ वा न द्वेषं करोति, य: इष्टार्थनाशे इष्टवियोगे सति शोकं न करोति, य: इष्टसंयोगम् अनिष्टपरिहारं वा न कामयते। य: शुभाशुभकर्मसु रागद्वेषादिकं परित्यजति, सः भक्तिमान् पुरुषः मम प्रियः भवति।

हिन्दी : जो प्रिय को प्राप्त कर एवं अपने लाभ के प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होता है, जो अप्रिय की प्राप्ति अथवा अनिष्ट होने पर द्वेष नहीं करता है, जो इच्छित अर्थ के नाश पर या इच्छित के वियोग पर शोक नहीं करता है, जो इष्ट की कामना नहीं करता है जो शुभ और अशुभ एवं राग और द्वेष का त्याग करने वाला है, वह भक्तिमान् पुरुष, मुझको प्रिय है।

English : He who neither rejoices on attaining favourite object and profit, nor hates on attaining unpleasant object or in case of failure, nor grieves on destruction of or separation from intended significance, nor desires for favour, renouncing good and evil as well as anger and hatred, he, the devotee is dear to Me.

==

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

पदच्छेदः समः शत्रौ च मित्रे च तथा मान-अपमानयोः।
शीत-उष्ण-सुख-दुःखेषु समः सङ्ग-विवर्जितः ॥

अन्वयः - शत्रौ च मित्रे मानापमानयोः समः तथा शीतोष्णसुखदुःखेषु समः च सङ्गविवर्जितः (अस्ति)॥

भावार्थः

संस्कृतम् : यः पुरुषः रिपौ सुहृदे च माने अपमाने च, शीते उष्णे च, सुखे दुःखे च सर्वदा समानः तिष्ठति। यः आसक्तिरहितः अस्ति।

हिन्दी : जो शत्रु और मित्र एवं मान एवं अपमान में समान है तथा शीत - उष्ण और सुख - दुःख आदि में समान होत है और आसक्ति से रहित है।

English : He who is alike to the enemy and friend and also in honour and dishonour, alike in cold-heat and pleasure-pain and is free from attachment.

==

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

पदच्छेदः तुल्य-निन्दा स्तुतिः मौनी सन्तुष्टः येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिर-मतिः भक्तिमान् मे प्रियः नरः ॥

अन्वयः - तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी येन केनचित् सन्तुष्टः अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् नरः मे प्रियः (अस्ति)॥

भावार्थः

संस्कृतम् : निन्दायां स्तुतौ च तुल्यद्रष्टा, मननशीलः अस्ति। यः येन केनापि प्रकारेण शरीरनिर्वाहे सन्तुष्टः सन् गृहादिषु आसक्तिं न करोति। यश्च मयि व्यवस्थितचित्त: स्थिरमति: च अस्ति सः भक्तिमान् पुरुषः मम प्रियः भवति।

हिन्दी : निन्दा एवं स्तुति में समान, मौनी, किसी भी प्रकार से शरीर निर्वहण करने में सन्तुष्ट, आवास आदि में आसक्ति न रखने वाला है और जो मुझमें चित्त को स्थापित करने वाला, स्थिरबुद्धि से युक्त है, वह भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

English : He who is equal in censure and praise, silent (contemplative), content with anything to sustain himself, no attachment for home, fixing the mind on Me, with firm determination, that man, a devotee, is dear to Me.

==

❖ *धर्म्यामृतानुष्ठानस्य फलश्रुतिः। यथोक्तधर्मपराणां स्वप्रीतिविषयत्वकथनम् -*

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तम् पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेतीव मे प्रियाः ॥२०॥

पदच्छेदः ये तु धर्म्य-अमृतम् इदम् यथा-उक्तम् पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्-परमाः भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः ॥

अन्वयः - तु ये श्रद्दधानाः मत्परमाः इदम् यथा उक्तम् धर्म्यामृतम् पर्युपासते ते भक्ताः मे अतीव प्रियाः (सन्ति)॥

भावार्थः

संस्कृतम् - परञ्च ये श्रद्धायुक्ता: मम परायणाः भूत्वा यथोक्तं प्रतिपादितम् उक्तम् धर्मानुप्राणितम् अनुतिष्ठन्ति ते भक्ता: श्रद्धां कुर्वन्त: शान्तिदान्त्यादिमन्तो मद्भजनशीला: मम अत्यन्तं प्रिया: सन्ति।

हिन्दी - परन्तु जो श्रद्धायुक्त पुरुष, मेरे परायण होकर, इस प्रकार कहे हुए धर्म-रूपी अमृत की उपासना करते हैं, वे श्रद्धा करते हुए शान्ति आदि से युक्त मेरा भजन करने वाले भक्त मुझको अत्यन्त प्रिय हैं।

English - But they who are endowed with faith, regarding Me as Supreme goal, such as is said, worship the righteous nectar (wisdom) such as is instructed, those peace-loving devotees endowed with faith are exceedingly dear to Me.

ॐतत् सत् इति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।
ॐ तत् सत् इति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्म-विद्यायां
योग-शास्त्रे श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवादे भक्ति-योगः नाम द्वादशः अध्यायः॥

परिशिष्ट - १

द्वादशोऽध्यायः

भक्तियोगः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥२॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥३॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥४॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥६॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥७॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥८॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥९॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥१०॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥११॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥१२॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥१३॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥१४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥१५॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥१६॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥१७॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥१८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥१९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥२०॥

ॐतत् सत् इति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।

परिशिष्टम् - २

श्लोकानुक्रमसूची

अथ चित्तं समाधातुं	॥९॥	मय्येव मन आधत्स्व	॥८॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि	॥११॥	यस्मान्नोद्विजते लोको	॥१५॥
अद्वेष्टा सर्वभूतानां	॥१३॥	ये तु धर्म्यामृतमिदं	॥२०॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः	॥१६॥	ये तु सर्वाणि कर्माणि	॥६॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि	॥१०॥	ये त्वक्षरमनिर्देश्यम्	॥३॥
एवं सततयुक्ता ये	॥१॥	यो न हृष्यति न द्वेष्टि	॥१७॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्	॥५॥	श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाद्	॥१२॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी	॥१९॥	सन्तुष्टः सततं योगी	॥१४॥
तेषामहं समुद्धर्ता	॥७॥	सन्नियम्येन्द्रियग्रामं	॥४॥
मय्यावेश्य मनो ये मां	॥२॥	समः शत्रौ च मित्रे च	॥१८॥

परिशिष्टम् - ३

पादानुक्रमसूची

अत ऊर्ध्वं न संशयः	॥८॥	ते मे युक्ततमा मताः	॥२॥
अथ चित्तं समाधातुं	॥९॥	तेषां के योगवित्तमाः	॥१॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि	॥११॥	तेषामहं समुद्धर्ता	॥७॥
अद्वेष्टा सर्वभूतानां	॥१३॥	तेऽतीव मे प्रियाः	॥२०॥
अनन्येनैव योगेन	॥६॥	त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्	॥१२॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः	॥१६॥	देहवद्भिरवाप्यते	॥५॥
अनिकेतः स्थिरमतिः	॥१९॥	ध्यानात्कर्मफलत्यागः	॥१२॥
अभ्यासयोगेन ततो	॥९॥	न शक्नोषि मयि स्थिरम्	॥९॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि	॥१०॥	न शोचति न काङ्क्षति	॥१७॥
अव्यक्तं पर्युपासते	॥३॥	नित्ययुक्ता उपासते	॥२॥
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं	॥५॥	निर्ममो निरहङ्कारः	॥१३॥
अव्यक्तासक्तचेतसाम्	॥५॥	निवसिष्यसि मय्येव	॥८॥
उदासीनो गतव्यथः	॥१६॥	भक्तास्त्वां पर्युपासते	॥१॥
एवं सततयुक्ता ये	॥१॥	भक्तिमान्मे प्रियो नरः	॥१९॥
कर्तुं मद्योगमाश्रितः	॥११॥	भक्तिमान्यः स मे प्रियः	॥१७॥
कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि	॥१०॥	भवामि नचिरात्पार्थ	॥७॥
कूटस्थमचलं ध्रुवम्	॥३॥	मत्कर्मपरमो भव	॥१०॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्	॥५॥	मदर्थमपि कर्माणि	॥१०॥
ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते	॥१२॥	मयि बुद्धिं निवेशय	॥८॥
ततः कुरु यतात्मवान्	॥११॥	मयि सन्न्यस्य मत्पराः	॥६॥
तथा मानापमानयोः	॥१८॥	मय्यर्पितमनोबुद्धिः	॥१४॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी	॥१९॥	मय्यावेशितचेतसाम्	॥७॥
ते प्राप्नुवन्ति मामेव	॥४॥	मय्यावेश्य मनो ये मां	॥२॥

मय्येव मन आधत्स्व	॥८॥	शीतोष्णसुखदुःखेषु	॥१८॥
मां ध्यायन्त उपासते	॥६॥	शुभाशुभपरित्यागी	॥१७॥
मामिच्छाप्तुं धनञ्जय	॥९॥	श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः	॥२०॥
मुक्तो यः स च मे प्रियः	॥१५॥	श्रद्धया परयोपेताः	॥२॥
मृत्युसंसारसागरात्	॥७॥	श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाद्	॥१२॥
मैत्रः करुण एव च	॥१३॥	सन्तुष्टः सततं योगी	॥१४॥
यतात्मा दृढनिश्चयः	॥१४॥	सन्तुष्टो येन केनचित्	॥१९॥
यथोक्तं पर्युपासते	॥२०॥	सन्नियम्येन्द्रियग्रामं	॥४॥
यस्मान्नोद्विजते लोको	॥१५॥	समः शत्रौ च मित्रे च	॥१८॥
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं	॥१॥	समः सङ्गविवर्जितः	॥१८॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं	॥२०॥	समदुःखसुखः क्षमी	॥१३॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि	॥६॥	सर्वकर्मफलत्यागं	॥११॥
ये त्वक्षरमनिर्देश्यम्	॥३॥	सर्वत्र समबुद्धयः	॥४॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि	॥१७॥	सर्वत्रगमचिन्त्यं च	॥३॥
यो मद्भक्तः स मे प्रियः	॥१४॥	सर्वभूतहिते रताः	॥४॥
यो मद्भक्तः स मे प्रियः	॥१६॥	सर्वारम्भपरित्यागी	॥१६॥
लोकान्नोद्विजते च यः	॥१५॥	हर्षामर्षभयोद्वेगैः	॥१५॥

परिशिष्टम् - ४

पदानुक्रमसूची

अक्षरम्	॥०३॥	अवाप्यते	॥५॥	उपासते	॥२,६॥
अक्षरम्	॥१॥	अवाप्स्यसि	॥१०॥	उपेताः	॥२॥
अचलम्	॥०३॥	अव्यक्तम्	॥०१,०३॥	ऊर्ध्वम्	॥८॥
अचिन्त्यम्	॥०३॥	अव्यक्ता	॥५॥	एतत्	॥११॥
अतः	॥८॥	अव्यक्तासक्तचेतसाम्	॥५॥	एव	॥४,६,८,८,१३॥
अतीव	॥२०॥	अशक्तः	॥११॥	एवम्	॥१॥
अथ	॥९,११॥	असमर्थः	॥१०॥	करुणः	॥१३॥
अद्वेष्टा	॥१३॥	असि	॥१०॥	कर्तुम्	॥११॥
अधिकतरः	॥५॥	असि	॥११॥	कर्मफलत्यागः	॥१२॥
अनन्तरम्	॥१२॥	अहम्	॥७॥	कर्माणि	॥१०॥
अनन्येन	॥६॥	आधत्स्व	॥८॥	कर्माणि	॥६॥
अनपेक्षः	॥१६॥	आप्तुम्	॥९॥	काङ्क्षति	॥१७॥
अनिकेतः	॥१९॥	आवेशितचेतसाम्	॥७॥	कुरु	॥११॥
अनिर्देश्यम्	॥०३॥	आवेश्य	॥२॥	कुर्वन्	॥१०॥
अपि	॥१॥	आश्रितः	॥११॥	कूटस्थम्	॥०३॥
अपि	॥१०॥	इच्छ	॥९॥	के	॥१॥
अपि	॥१०॥	इदम्	॥२०॥	केनचित्	॥१९॥
अपि	॥११॥	इन्द्रियग्रामम्	॥०४॥	क्लेशः	॥५॥
अभ्यासयोगेन	॥९॥	उक्तम्	॥२०॥	क्षमी	॥१३॥
अभ्यासात्	॥१२॥	उदासीनः	॥१६॥	गतव्यथः	॥१६॥
अभ्यासे	॥१०॥	उद्विजते	॥१५॥	गतिः	॥५॥
अर्पितमनोबुद्धिः	॥१४॥				

च	॥०१,०३	निवसिष्यसि	॥८॥	मे	॥१४,१५,१६,१७,
	१३, १५,१८॥	निवेशय	॥८॥		१९,२,२०॥
चित्तम्	॥९॥	परया	॥२॥	मैत्रः	॥१३॥
ज्ञानम्	॥१२॥	पर्युपासते	॥१, ३, २०॥	मौनी	॥१९॥
ज्ञानात्	॥१२॥	पार्थ	॥७॥	यः	॥१४,१५,१६,१७॥
ततः	॥११, ९॥	प्राप्नुवन्ति	॥४॥	यतात्मवान्	॥११॥
तथा	॥१८॥	प्रियः	॥१४,१५,१६,१७,१९॥	यतात्मा	॥१४॥
तु	॥०३, २०, ६॥	प्रियाः	॥२०॥	यथा	॥२०॥
तुल्यनिन्दास्तुतिः	॥१९॥	बुद्धिम्	॥८॥	यस्मात्	॥१५॥
ते	॥२,४, २०॥	भक्ताः	॥१,२०॥	युक्ततमाः	॥२॥
तेषाम्	॥१, ५, ७॥	भक्तिमान्	॥१७,१९॥	ये	॥१,२,३,२०,६॥
त्यागात्	॥१२॥	भव	॥१०॥	येन	॥१९॥
त्वाम्	॥१॥	भवामि	॥७॥	योगवित्तमाः	॥१॥
दक्षः	॥१६॥	मताः	॥२॥	योगी	॥१४॥
दुःखम्	॥५॥	मत्कर्मपरमः	॥१०॥	योगेन	॥६॥
दृढनिश्चयः	॥१४॥	मत्परमाः	॥२०॥	रताः	॥०४॥
देहवद्भिः	॥५॥	मत्पराः	॥६॥	लोकः	॥१५॥
द्वेष्टि	॥१७॥	मदर्थं	॥१०॥	लोकात्	॥१५॥
धनञ्जय	॥९॥	मद्भक्तः	॥१४,१६॥	विशिष्यते	॥१२॥
धर्म्यामृतम्	॥२०॥	मद्योगम्	॥११॥	शक्नोषि	॥९॥
ध्यानम्	॥१२॥	मनः	॥२,८॥	शत्रौ	॥१८॥
ध्यायन्तः	॥६॥	मयि	॥१४,२,६,७,८,९॥	शान्तिः	॥१२॥
ध्रुवम्	॥०३॥	मानापमानयोः	॥१८॥	शीतोष्णसुखदुःखेषु	॥१८॥
न	॥१५,१७,७, ८, ९॥	माम्	॥२,४,६,९॥	शुचिः	॥१६॥
चिरात्	॥७॥	मित्रे	॥१८॥	शुभाशुभपरित्यागी	॥१७॥
नरः	॥१९॥	मुक्तः	॥१५॥	शोचति	॥१७॥
नित्ययुक्ताः	॥२॥	मृत्युसंसारसागरात्	॥७॥	श्रद्दधानाः	॥२०॥
निरहङ्कारः	॥१३॥			श्रद्धया	॥२॥
निर्ममः	॥१३॥			श्रेयः	॥१२॥

संशयः	॥८॥	समदुःखसुखः	॥१३॥	सर्वाणि	॥६॥
सः	॥१४,१५,१६,१७॥	समबुद्धयः	॥०४॥	सर्वारम्भपरित्यागी	॥१६॥
सङ्गविवर्जितः	॥१८॥	समाधातुम्	॥९॥	सिद्धिम्	॥१०॥
सततम्	॥१४॥	समुद्धर्ता	॥७॥	स्थिरमतिः	॥१९॥
सततयुक्ताः	॥१॥	सर्वकर्मफलत्यागम्	॥११॥	स्थिरम्	॥९॥
सन्तुष्टः	॥१४,१९॥	सर्वत्र	॥०४॥	हर्षामर्षभयोद्वेगैः	॥१५॥
सन्नियम्य	॥०४॥	सर्वत्रगम्	॥०३॥	हि	॥१२,५॥
सन्न्यस्य	॥६॥	सर्वभूतहिते	॥०४॥	हृष्यति	॥१७॥
समः	॥१८॥	सर्वभूतानाम्	॥१३॥		

परिशिष्टम् - ५

प्रयुक्तानां धातूनां विवरणम्

प्रयोगः	धातुविवरणम्
अवाप्यते (श्लो० - ५)	अव-आप् [कर्मणि-लट्-प्र-एक-आत्मनेपदी-अव-आपॢँ-स्वादिः]
	आप्लृ व्याप्तौ (पा.धा. - स्वादिः -१५
अवाप्स्यसि (श्लो० - १०)	अव-आप् [कर्तरि-लृट्-म-एक-परस्मैपदी-अव-आपॢँ-स्वादिः]
	आप्लृ व्याप्तौ (पा.धा. - स्वादिः -१५
असि (श्लो० - १०, ११)	अस् [कर्तरि-लट्-म-एक-परस्मैपदी-असँ-अदादिः]
	अस भुवि (पा.धा. - अदादिः -५८)
आधत्स्व (श्लो० - ८)	आङ्-धा[कर्तरि-लोट्-म-एक-आत्मने.-आङ्-डुधाञ्-जुहोत्यादिः]
	डुधाञ् धारणपोषणयोः (पा.धा. - जुहोत्यादिः -१०)
आप्तुम् (श्लो० - ९)	आप् [कृत्-प्रत्ययः:तुमुन्-आपॢँ-स्वादिः]
	आप्लृ व्याप्तौ (पा.धा. - स्वादिः -१५)
आवेश्य (श्लो० - २)	आङ्-विश् [कृत्-प्रत्ययः:ल्यप्-आङ्-विशँ-तुदादिः]
	विश प्रवेशने (पा.धा. - तुदादिः -१३२)
आश्रितः (श्लो० - ११)	आङ्-श्रि [कृत्-प्रत्ययः:क्त-आङ्-श्रिञ्-भ्वादिः-पुं][१-एक]
	श्रिञ् सेवायाम्। (पा.धा. - भ्वादिः -६३८)
इच्छ (श्लो० - ९)	इष् [कर्तरि-लोट्-म-एक-परस्मैपदी-इषुँ-तुदादिः]
	इषु इच्छायाम् (पा.धा. - तुदादिः -६१)
उक्तम् (श्लो० - २०)	वच् [कृत्-प्रत्ययः:क्त-वचँ-अदादिः-नपुं][२-एक]
	वच परिभाषणे (पा.धा. - अदादिः -५६)
उद्विजते (श्लो० - १५)	उद्-विज् [कर्तरि-लट्-प्र-एक-आत्मनेपदी-उद्-ओँविजीँ-तुदादिः]
	ओविजी भयचलनयोः (पा.धा. - तुदादिः -९)
उपासते (श्लो० - २,६)	उप-आस् [कर्तरि-लट्-प्र-बहु-आत्मनेपदी-उप-आसँ-अदादिः]
	आस उपवेशने (पा.धा. - अदादिः -११)

प्रयोगः	धातुविवरणम्
उपेताः (श्लो० - २)	उप-इ [कृत्-प्रत्ययः:क्त-उप-इण्-अदादिः-पुं][१-बहु]
	इण् गतौ (पा.धा. - अदादिः -३८)
कर्तुम् (श्लो० -११)	कृ[कृत्-प्रत्ययः:तुमुन्-डुकृञ्-तनादिः]
	डुकृञ् करणे (पा.धा. - तनादिः -१०
काङ्क्षति (श्लो० -१७)	काङ्क्ष् [कर्तरि-लट्-प्र-एक-परस्मैपदी-काक्षिँ-भ्वादिः]
	काक्षि वाक्षि माक्षि काङ्क्षायाम् (पा.धा. - भ्वादिः -४४९)
कुरु (श्लो० -११)	कृ [कर्तरि-लोट्-म-एक-परस्मैपदी-डुकृञ्-तनादिः]
	डुकृञ् करणे (पा.धा. - तनादिः -१०
कुर्वन् (श्लो० -१०)	कृ [कृत्-प्रत्ययः:शतृ-डुकृञ्-तनादिः-पुं][१-एक]
	डुकृञ् करणे (पा.धा. - तनादिः -१०
द्वेष्टि (श्लो० -१७)	द्विष् [कर्तरि-लट्-प्र-एक-परस्मैपदी-द्विषँ-अदादिः]
	द्विष अप्रीतौ (पा.धा. - अदादिः -३
ध्यायन्तः (श्लो० -६)	ध्यै [कृत्-प्रत्ययः:शतृ-ध्यै-भ्वादिः-पुं][१-बहु]
	ध्यै चिन्तायाम् (पा.धा. - भ्वादिः -६४९
निवसिष्यसि (श्लो० -८)	नि-वस् [कर्तरि-लृट्-म-एक-परस्मैपदी-नि-वसँ-भ्वादिः]
	वस निवासे (पा.धा. - भ्वादिः -७३२
निवेशय (श्लो० -८)	नि-विश्-णिच्[कर्तरि-लट्-प्र-एक-परस्मैपदी-नि-विशँ-णिच्-तुदादिः]
	विश प्रवेशने (पा.धा. - तुदादिः -१३२
पर्युपासते (श्लो० -१,३,२०)	परि-उप-आस् [कर्तरि-लट्-प्र-बहु-आत्मनेपदी-परि-उप-आसँ-अदादिः]
	आस उपवेशने (पा.धा. - अदादिः -११
प्राप्नुवन्ति (श्लो० -४)	प्र-आप् [कर्तरि-लट्-प्र-बहु-परस्मैपदी-प्र-आपॢँ-स्वादिः]
	आप्लृ व्याप्तौ (पा.धा. - स्वादिः -१५
भव (श्लो० -१०)	भू [कर्तरि-लोट्-म-एक-परस्मैपदी-भू-भ्वादिः]
	भू सत्तायाम्। (पा.धा. - भ्वादिः -१
भवामि (श्लो० - ७)	भू [कर्तरि-लट्-उ-एक-परस्मैपदी-भू-भ्वादिः]
	भू सत्तायाम्। (पा.धा. - भ्वादिः -१
मुक्तः (श्लो० - १५)	मुच् [कृत्-प्रत्ययः:क्त-मुचॢँ-तुदादिः-पुं][१-एक]
	मुच्लृ मोक्षणे (पा.धा. - तुदादिः -१३८

प्रयोगः	धातुविवरणम्
युक्ताः (श्लो० - १,२)	युज् [कृत्-प्रत्ययः:क्त-युजिँर्-रुधादिः-पुं][१-बहु] युजिर् योगे (पा.धा. - रुधादिः -७
विशिष्यते (श्लो० - १२)	वि-शास् [कर्तरि-लट्-प्र-एक-आत्मनेपदी-वि-शासुँ-अदादिः] शासु अनुशिष्टौ (पा.धा. - अदादिः -६८)
शक्नोषि (श्लो० - ९)	शक् [कर्तरि-लट्-म-एक-परस्मैपदी-शक्लृँ-स्वादिः] शक्लृ शक्तौ (पा.धा. - स्वादिः -१६)
शोचति (श्लो० - १७)	शुच् [कर्तरि-लट्-प्र-एक-परस्मैपदी-शुचँ-भ्वादिः] शुच शोके (पा.धा. - भ्वादिः -१११)
सन्नियम्य (श्लो० - ४)	सम्-नि-यम् [कृत्-प्रत्ययः:ल्यप्-सम्-नि-यमोँ-भ्वादिः] यमोऽपरिवेषणे (पा.धा. - भ्वादिः -५६५)
सन्न्यस्य (श्लो० - ६)	सम्-नि-अस् [कृत्-प्रत्ययः:ल्यप्-सम्-नि-असँ-भ्वादिः] अस भुवि (पा.धा. - अदादिः -५८)
समाधातुम् (श्लो० - ९)	सम्-आङ्-धा [कृत्-प्रत्ययः:तुमुन्-सम्-आङ्-डुधाञ्-जुहोत्यादिः] डुधाञ् धारणपोषणयोः (पा.धा. - जुहोत्यादिः -१०)
हृष्यति (श्लो० - १७)	हृष् [कर्तरि-लट्-प्र-एक-परस्मैपदी-हृषँ-दिवादिः] हृष तुष्टौ (पा.धा. - दिवादिः -११९)